आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 5/दिसंबर 2023
Received: 01/11/2023; Accepted: 21/11/2023; Published: 26/12/2023

फीजी हिंदी भाषा प्रलेखन की दशा-दिशा

डॉ. सुभाषिनी लता कुमार
असिस्टंट प्रोफेसर
फीजी नेशनल युनिवर्सिटी

डॉ. सुभाषिनी लता कुमार,**फीजी हिंदी भाषा प्रलेखन की दशा-दिशा**,आखर हिंदी पत्रिका, खंड 3/अंक 5/दिसंबर 2023, (468-474)

भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है बल्कि एक समूह की पहचान का केंद्रीय तत्व है जिसका संरक्षण महत्वपूर्ण है। फीजी हिंदी अधिकांशतः भारतीय मूल के फीजियन लोगों द्वारा बोली जाने वाली हिंदी की एक विदेशी शैली है। फीजी हिंदी मुख्य रूप से अवधी, भोजपुरी और हिन्दी की अन्य बोलियों से व्युत्पन्न भाषा है, जिसमें अन्य भारतीय भाषाओं के अलावा फीजियन और अंग्रेजी भाषा से बड़ी संख्या में शब्द उधार लिए गए हैं।[1] फीजी हिन्दी में बड़ी संख्या में ऐसे अनूठे शब्द हैं, जो गिरमिट काल के दौरान कृषि जीवन और नए माहौल में ढलने के लिए जरूरी थे।

प्रारंभ में, अधिकांश गिरमिटिया मजदूर मध्य और पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के जिलों से फिजी आए, जबकि एक छोटा प्रतिशत उत्तर-पश्चिम सीमांत और दक्षिण भारत जैसे आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु से 19 वीं सदी के अंत और 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में आए थे। सन् 1879 और 1916 के बीच, भारत में तत्कालीन ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा लगभग साठ हज़ार भारतीयों को गन्ने, नारियल और कपास के बागानों में काम करने के लिए फीजी द्वीप समूह लाया गया था। चूंकि ये भारतीय विविध भारतीय क्षेत्रों से थे इसलिए उन्हें संवाद करने के लिए एक संपर्क भाषा की आवश्यकता थी। उन दिनों फीजी पर ब्रिटिश सरकार का राज था और उपनिवेशक प्रभाव के कारण यहाँ हिंदी की विभिन्न उपभाषाओं और बोलियों में अंग्रेजी, फीजियन देशज शब्दों का मिश्रण हुआ। आज यह भाषा 'फीजी हिंदी' या 'फीजी बात' के नाम से जानी जाती है।

डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित के शब्दों में 'फिजियन हिन्दी का शब्द भंडार हिन्दी, भोजपुरी, अवधी, अंग्रेजी और फिजीयन शब्दों के मेल से बना है जैसे – कौनची (कौनचीज), वास्तीन (वास्ते), संधे (संगे), पतरा (पतला),

मनहाई (लोग) आदि। इसमें कुछ क्रियाएँ भी अलग दिखाई देती है जैसे –जाए सकेगा (जा सकेगा), उ खरीदिस (उसने खरीदा) आदि'।[2] फीजी हिंदी भाषा न तो पूर्णत: अवधी है और न ही भोजपुरी। यह हिंदी फीजी में विकसित एक नई भाषिक शैली है जिसकी संरचना तो सामान्यत: अवधी की है, भोजपुरी का उस पर प्रभाव है तथा अंग्रेजी और काईबीती के तत्सम और तद्भव दोनों के शब्दों का सहज समावेश है। 'फीजी हिंदी' पर कई विदेशी विद्वानों ने महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे हैं जिसमें रोडने मोग का ग्रंथ 'फीजी हिंदी' एक महत्वपूर्ण परिचयात्मक ग्रंथ है।

दक्षिण प्रशान्त महासागर में स्थित फीजी द्वीप समूह गणराज्य ऑस्ट्रेलिया से लगभग 3000 किलोमीटर और न्यूज़ीलैंड से लगभग 2000 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। फीजी एक बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक देश है जहाँ पर प्रमुख जातियाँ फीजियन और हिन्दुस्तानी हैं। फीजी में गिरमिट प्रथा के अंतर्गत आए प्रवासी भारतीयों का इतिहास लगभग 144 वर्ष पुराना है। गिरमिट प्रथा की समाप्ति पश्चात 60% गिरमिटिया मजदूर फीजी में ही बस गए और उनके वंशज वहाँ जीवन व्यापन कर रहे हैं।[3] आज फीजी में भारतीय मूल के फीजियन जिनकी जन आबादी 37 % हैं, जो मुख्य रूप से हिंदी के एक स्थानीय संस्करण 'फीजी हिंदी' बोलते हैं।

हालांकि फीजी हिंदी यहाँ के लगभग सभी भारतवंशियों की मातृभाषा है, लेकिन अंग्रेजी और खड़ी बोली हिंदी की तुलना में इसे निम्न कोटी की भाषा समझा जाता है।[4] जहाँ शिक्षण और औपचारिक स्थलों पर मानक हिंदी को मान्यता दी जा रही हैं वहीं अनऔपचारिक स्थलों पर फीजी हिंदी अभिव्यक्ति का माध्यम है। फीजी हिंदी भाषा के साथ अक्सर यह संदेह रहा है कि वह एक अपूर्ण टूटी-फूटी, व्याकरण हीन भाषा है, और इसका प्रयोग सिर्फ बोल-चाल के लिए ही उपयुक्त है। इस वजह से इसके संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया गया।

आज आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के दौर में अंग्रेजी भाषा का निरंतर प्रभाव फीजी के प्रवासी भारतीय समाज पर भी देखा जा सकता है। जैसे-जैसे लोग गाँवों से शहर की ओर बढ़ रहे हैं और शहर से विदेश की ओर प्रवास कर रहे हैं तो इसके साथ उनकी भाषा एवं संस्कृति में परिवर्तन हो रहा है और धीरे-धीरे वे अपने इतिहास, पूर्वजों की भाषा एवं संस्कृति से कटते जा रहे हैं। फीजी के सुप्रसिद्ध इतिहासकार, प्रो. बृज विलाश लाल कहते हैं- "हम लोग के चाही कि आने वाले संतान के लिए हम लोग पुराना जमाना के बारे में लिखी ताकी उन के मालूम होई कि हम लोग कौन रास्ता से गुजरा...। हम लोग के अपना इतिहास बचाये के रखे के चाही। काहे कि बिना इतिहास के हम लोग एक बिना पेन्दी के लोटा रहीब।"[5] उनका मत है कि मानव को अपने सांस्कृतिक, शैक्षणिक, जातीय और सामाजिक मूल्यों को कायम रखने के लिए अपने पूर्वजों की भाषा को संजोकर रखना है। जहाँ भाषा अल्पसंख्यक समूह की पहचान का एक महत्वपूर्ण प्रतीक माना जाता है, वहाँ भाषा के लंबे समय तक बनाए रहने की संभावना रहती है वरन् उसके लुप्त होने की संभावना बढ़ जाती है।

जातीय पहचान के सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक भाषा है। लोगों की पहचान उस भाषा से परिभाषित होती है जिसे वे बोलते और लिखते हैं। यदि अल्पज्ञात भाषाएं विलुप्त हो जाती हैं, तो अल्पज्ञात

भाषा का उपयोग करने वालों की जातीय पहचान भी गायब हो जाएगी। इसलिए जिस प्रकार प्राचीन पुरातत्व स्थलों, वास्तुकला, वनस्पतियों और जीवों की लुप्तप्राय प्रजातियों, आदि का संरक्षण जरूरी है वैसे ही अल्पज्ञात भाषाओं के संरक्षण के लिए उनका प्रलेखन महत्वपूर्ण है जो हमारी वैश्विक विरासत का एक अनूठा हिस्सा हैं।

इक्कीसवीं शताब्दी में फीजी हिंदी भाषा के प्रलेखन की ओर प्रो.सुब्रमनी का ध्यान गया और उन्होंने अंग्रेजी भाषा के मोह को छोड़कर फीजी हिंदी में साहित्यिक कृतियाँ लिखनी प्रारंभ कीं। गिरमिटियों की भाषा, जीवन शैली, संस्कृति, परंपरा, अनुभव आदि का यथार्थ चित्रण 'डउका पुरान' और 'फीजी माँ' औपन्यासिक कृतियों में लिपि बद्ध किया गया है। इस प्रकार प्रो.सुब्रमनी ने अपने पूर्वजों के इतिहास तथा अपने समूह के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए फीजी हिंदी को लिपि बद्ध एवं संरक्षित करने पर कार्य प्रारंभ किए। 'डउका पुरान' और 'फीजी माँ' की खासियत यह है कि प्रो. सुब्रमनी ने इस रचना के माध्यम से निम्नवर्गीय व्यक्तियों को वाणी दी है तथा फीजी हिंदी भाषा को साहित्यिक विधा में लिपिबद्ध कर इसे साहित्य विश्व में स्थापित करने का प्रयास किया है।

उपन्यास गद्यात्मक महाकाव्य होता है, जिसमें युग जीवन की अभिव्यक्ति के साथ समाज के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक समस्याओं और परिस्थितियों का व्यापक चित्रण मिलता है। साहित्यकार ने 'डउका पुरान' में अपने पूर्वजों की संवेदनाओं, भावनाओं तथा विचारों को निजी अनुभवों के साथ अपनी बचपन की भाषा में अभिव्यक्त किया है। फीजी हिंदी में लिखने के संबंध में सुब्रमनी जी कहते हैं कि "भारतवंशियों के इतिहास को अगर ईमानदारी के साथ लिपिबद्ध करना हो तो उसे किसी अन्य भाषा में करना असम्भव होगा। अगर इस उपन्यास (डउका पुरान) को अंग्रेजी में लिखा गया होता तो कहानियों व पंक्तियों के भावार्थ में बदलाव आ जाता। जब मैंने फीजी हिंदी में लिखना शुरू किया तो इसकी भाषा शैली ने मुझे अकस्मात अपनी ओर प्रभावित कर लिया।"[6] शायद इसलिए डउका पुरान की भाषा शैली एकदम चुस्त और बोधगम्य है।

उपन्यास की भाषा के संबंध में लेखक का विचार है कि "मेरे हिंदी उपन्यासों को फीजी हिंदी के शब्दकोशों के रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है। उपन्यास में ऐसे पात्रों की भीड़ है जो भाषा का उपयोग अपने ही विशिष्ट अंदाज़ में करते हैं।"[7] डउका पुरान उपन्यास में एक ओर प्रो. सुब्रमनी ने निम्नवर्गीय फीजीलाल को उपन्यास के नायक के रूप में चित्रित किया तो वहीं दूसरी ओर फीजी में विलुप्त हो रही फीजी हिंदी भाषा के सुरक्षंण हेतु साहित्यिक भाषा के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रो.सुब्रमनी इस उपन्यास को फीजी हिंदी भाषा का पुरालेख मानते हैं क्योंकि उपन्यास में उन्होंने फीजी हिंदी के ऐसे अनूठे शब्दों को लिपिबद्ध किया है जो लुप्त होने की कगार में हैं।

यूनेस्को का मानना है कि हर दो हफ़्ते में दुनिया में एक भाषा विलुप्त हो जाती है, और उसके साथ ही उससे जुड़ा मानवीय इतिहास और सांस्कृतिक विरासत भी खो जाती है।[8] किसी भी समाज की भाषा उस अंचल की रीढ़ होती है और उसके खत्म होने का सवाल सिर्फ भाषाई नहीं है बल्कि, बोली के नष्ट होने के साथ ही जनजातीय संस्कृति, तकनीक और उसमें अर्जित बेशकीमती परंपरागत ज्ञान भी तहस–नहस हो जाता है। बाज़ार, रोजगार और शिक्षा जैसी वजहों से जनजातीय बोलियों में बाहर के शब्द तो प्रचलित हो रहे हैं लेकिन,

उनकी अपनी मातृभाषा के स्थानिक शब्द प्रचलन से बाहर हो रहे हैं, जो दुखद है। इसलिए हर भाषा को पहचान मिलनी चाहिए और सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में उसका विशिष्ट हिस्सा होना चाहिए। लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता है। जबकि भाषा ही अक्सर समुदाय के गीतों, कहानियों और कविताओं को व्यक्त करने का एकमात्र तरीका है। इस विचार हेतु प्रो. सुब्रमनी जी ने 'डउका पुरान' (2001) और 'फीजी माँ' (2018) में फीजी हिंदी के ऐसे अनूठे शब्दों को संग्रहित किया है जो आधुनिक भाषाओं के मोह में लुप्त हो रहे थे जैसे 'मनहई', 'छीछर लेदर', 'बजर भट्टू', 'टिर्राई', 'नारियल के बूलू', 'टिबोली', 'झाप', 'निपोरिस', 'ठिनकही', 'गोदना' 'झाप' आदि फीजी हिंदी शब्दों का पुरालेख है। इसके अतिरिक्त इसमें फीजियन भाषा के बहुत से शब्द उधार लिए गए हैं, जैसे-

बकेड़ा- केकड़ा	लोलो- नारियल दूध
कोरो- गाँव	नंगोना- यंगोना (पेय पदार्थ)
मातंगाली- सामंत	नगोना- पेय पदार्थ
सूलु- लुंगी	तईतई- खेत
तबाले- पत्नी का भाई	केरे केरे- माँगना

प्रगति, विकास, संस्कृति, इतिहास-भूगोल आदि की जड़ भाषा होती है और भाषा को समृद्ध साहित्य करता है और साहित्य प्रत्येक वर्तमान को कलात्मक एवं यथार्थ रूप में समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। भाषा के संबंध में फीजीलाल कहता है- "भाखाक कदर हम जान पावा जब हमार तीरथ सुरु भय। केतने आनूआनूम रात गुजारा। कभी जहाज मा कभी कभी कोरोम। खाली भाखाक दुई बात जानके जरिये लोग आपन दुवारी खोल देवैं। आखिर ई-डउका पुरान का है- भाखा तो है जड़ एकर।" [9] उनका मत है कि मानव को अपनी सांस्कृतिक, शैक्षणिक, जातीय और सामाजिक मूल्यों को कायम रखने के लिए अपने पूर्वजों की भाषा को संजोकर रखना है। जहाँ भाषा अल्पसंख्यक समूह की पहचान का एक महत्वपूर्ण प्रतीक माना जाता है, वहाँ भाषा के लंबे समय तक बनाए रहने की संभावना रहती है वरन् उसके लुप्त होने की संभावना बढ़ जाती है। 'डउका पुरान' में उपन्यासकार अपने पूर्वजों की भाषा के महत्व को प्रतिपादित करते हैं।

भाषा न केवल लोगों के बीच संवाद करने का एक तरीका है, बल्कि एक संस्कृति भी है। 'डउका पुरान' में फीजी की ग्रामीण संस्कृति का जोरदार चित्रण प्रस्तुत किया गया है। फीजी के खेत-खलियान भारतीय संस्कृति के गढ़ रहे हैं पर अब वे संकट में घिरे हुए हैं। किसानों के विस्थापन और राजनैतिक अस्थिरता के कारण भारतीय समुदाय की जीवन शैली बिखरने लगी है। उपन्यासकार ने 'डउका पुरान' में फीजी के प्रवासी भारतीयों की जीवन शैली एवं संस्कृतियों का प्रभावी चित्र खींचा है। 'डउका पुरान' में नायक फीजीलाल अपने गाँव में होली पर्व का वर्णन इन शब्दों में करते हैं-

"ऊ साल हम लोग खूब जम कै होली मनावा। नवा टोलिक उप्पर पहाड़ पे हम लोग होलिका फूंका। मंडली वाले पहली दफा चौताल गाइन। कोइक सहूरे न रहा गावेक। अउरतियन खूब हंसै। बोले, 'चौताल गावें की सोहर!' लल्ला थोरा जानत रहा। आयक चौताल उठाय दे। भागीरथ के भी फगुवाम सउक रहा। खजड़ी या झीका उठाय लेवै। बाप हमार लइक बइठ जाय डंडताल।"[10]

उपर्युक्त अंश में फीजी के गाँवों में किस प्रकार मंडलियों द्वारा होली का पर्व मनाया जाता है दर्शाया गया है। होली के महीने में लोग चौताल गाने का प्रयास करते हैं तथा होलिका दहन की रस्म निभाते हैं। अतः भाषाएँ इन अनोखी संस्कृतियों को भी व्यक्त करती हैं। ये सभी चीजें संस्कृति, मानव व्यवहार और भावना की व्याख्या करने का एक तरीका है जो अंग्रेजी भाषा में उस सजीवता से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

साथ ही इन भाषाओं में लोक जनित मुहावरें होते हैं जो एक विशिष्ट देशकाल की सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता है और शायद कहीं और मौजूद नहीं होते हों। जैसे 'कावा काँटना'- आँख बचाकर दूसरी ओर निकल जाना, 'चिंउ तलक नइं करिस'- आवाज़ न करना, चुपचाप सहन कर लेना, 'रास्ते के रोडा'- काम में अड़चन आना आदि। इसके अलावा भाषा लोक मान्यताओं व प्राचीन संस्कृतियों का वाहन है। 'फीजी माँ' उपन्यास में प्रो. सुब्रमनी ने देवी पूजा, भूमि पूजा, लोक गीत, बकड़ी पूजन, पियरी झाड़ना, पूर्वजों अंधविश्वास, पूर्वजों के खान-पान की चीज़े, शादी बियाह आदि को उपन्यास की कथा में समाहित किया है। उदाहरण के लिए 'सतवा' एक प्रकार का मिष्ठान है जो फीजी के लम्बासा ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित था पर वर्तमान पीढ़ी इस के बारे में बहुत कम जानती हैं और आज के अधिकांश युवा वर्ग ने इस मिष्ठान को चखा तक नहीं है। 'फीजी माँ' में नायिका बेदमती अपनी माँ से 'सतवा' के विषय में पूछती है-

"मइया थरिया में रकम रकम के दाल निकारे रही सबेरे पीसे के खातिर- उर्दी, मटर, तूर, मकई। माँ, सतुवा कइसे बने?...
रोज देखत हिव, पता नइं तोके ? काहे सिखियो, तोके कहां चक्की चलाय के है। पता नइं का करियो आगे चल के।...
सात रंग के दाल से बने सतवा।"[11]

जब बेदमती की बहन बिंदा बीमार पड़ती है तब माँ एक साधू (महादेव) से पियरी उतारने को कहती हैं। पियरी उतारने का वर्णन लेखक ने इन शब्दों में दिया है-

"चूना मंगाइस, पूजा वला थाली में दूब गिरास अउर पियाली में पानी। महादेव चूना राउन से पूजा वला थाली में डारिस, उप्पर से पानी छोड़िस। दूब गिरास के मोटा से

गुहिस। बिंदा के ठीक से सामने बैठारिस, बताइस थाली में देखो। महादेव मंतर पढ़े के सुरू करिस अउर दूब गिरास थाली के राउन घुमाय लगा। ...महादेव मइया के थाली के तरफ इसारा करिस। हम लोग सब कोई थाली देखे लगा। थाली में चूना पियर होई लगा। मइया बिंदा के आँखी हाथ से खोल के देखिस। 'सच्चे महादेव आँखी बहुते फरका लगे'।" [12]

इस प्रकार फीजी हिंदी का प्रलेखन एक ओर प्रवासी भारतीयों की भाषा, रीति-रिवाज, उनके आचार-विचार, आशा-आकांशाओं और उनके उत्थान एवं पतन का आख्यान है वहीं दूसरी ओर फीजी में बसे भारतवंशियों के मनोविनोद, जमीन, खेती-बारी, पशुओं, परंपरा-गत विश्वास आदि प्रवृतियों का अनोखा भाषागत संकलन है। यदि हम भाषाओं को खो देते हैं तो हम प्राचीन ज्ञान भी खो देते हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भाषा कई समूहों के लिए पहचान और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण आधार है। अपनी विशिष्ट पहचान और संस्कृति को बनाए रखना आमतौर पर अल्पसंख्यक समूह के सदस्य के आत्म सम्मान के लिए महत्वपूर्ण है। सक्रिय भाषा संरक्षण के बिना अल्पज्ञात भाषाएं विलुप्त हो सकती हैं। प्रो. सुब्रमनी के प्रलेखन प्रयास ने फीजी हिंदी भाषा संरक्षण हेतु प्रलेखन का मार्ग प्रशस्त किया है।

संदर्भ सूची

[1] Seigel,J. 1987. Language Contact in a Plantation Environment: A Sociolinguistic History of Fiji. Cambridge University Press. P. 129

[2] डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, प्रवासी हिन्दी साहित्य,पृष्ठ 66

[3] Seigel,J. 1987. Language Contact in a Plantation Environment: A Sociolinguistic History of Fiji. Cambridge University Press. P. 185

[4] विजय नाईडू. 1979. Girmit- A Centenary Anthology 1879-1979. Fiji Indian Culture in Fiji. Ministry of Information, Fiji. पृष्ठ.31

[5] बृज विलाश लाल. 2018. कोई किस्सा बताओ. प्रवीन चन्द्रा (संपादक) पृष्ठ 46.

[6] हिंदी समाचार पत्रिका. जून, 2001. ऑस्ट्रलिया. Vol.4, No6, पृष्ठ.20.

[7] नूतन पाण्डय. 2022. फीजी हिंदी उपन्यासकार प्रो. सुब्रमनी से संवाद. फीजी में हिंदी: विविध प्रसंग- राजेश कुमार माँझी (सं), सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली. पृष्ठ 167.

[8] सांस्कृतिक विरासत की पहचान है मातृभाषा. 2019. युनेस्को. Retrieved from https://news.un.org/hi/story/2019/02/1011101

[9] सुब्रमनी .2001. डउका पुरान. स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली. पृष्ठ 137

[10] सुब्रमनी . 2001. डउका पुरान. स्टार पब्लिकेशंस, नई दिल्ली. पृष्ठ 122

[11] सुब्रमनी. 2018. फीजी माँ. युनिवर्सिटी ऑफ द सउथ पेसिफिक, फीजी. पृष्ठ 256

[12]सुब्रमनी. 2018. फीजी माँ. युनिवर्सिटी ऑफ द सउथ पेसिफिक, फीजी. पृष्ठ 494

****